# विभाजन केन्द्रित हिंदी के सात उपन्यासों का आलोचनात्मक एक अध्ययन

***डॉ. आर.पी. वर्मा***

*असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,*
*राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,*
*जनपद–उन्नाव, उ.प्र.*

विभाजन केन्द्रित उपन्यास हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी पर्याप्त लिखे गये हैं। उनमें से कुछ उपन्यास बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, जिनकी चर्चा विभाजन केन्द्रित उपन्यासों का नाम लेते ही अपेक्षित हो जाती है। जैसे अंग्रेजी में लिखा गया खुशवन्त सिंह का 'ट्रेन टू पाकिस्तान', चमन नाहन का 'आजादी', शार्क मुकद्दम का 'व्हेन फ्रीडम केम', बंगला में लिखित जरासंध का 'उत्तराधिकार', पंजाबी में लिखित नानक सिंह का 'पारो आये चार जड़े', करतार सिंह दुग्गल का 'नहूं पे मासत', सोहन सिंह सीतल का 'बलवंते कातल', अमृता पीतम का 'पंजर', उर्दू में कुरद तुल्लाह सहाब का 'या खुदा', कुतुल–ऐन–हैदर का 'मेरे ही सनम खाने', 'सफीम–ए–गमे'। 'दिल', 'आग का दरिया', डॉ0 अहसन फारुखी का 'शामे–अवध', 'इन्तिजार', हुसेन का 'बस्ती', खदीजा मस्तूर का 'आंगन', अब्दुस्समद 'दो गज जमीन', अब्दुल्लाह हुसेन का 'उदास नस्लें' एवं हुसैनुल हक का 'फराद' जैसे कई महत्वपूर्ण उपन्यासों का लेखन हुआ। लेकिन अधिकतर लेखन एवं चर्चा हिंदी और उर्दू उपन्यासों की ही हुई। ये उपन्यास विभाजन से उत्पन्न समस्याओं को आधार बनाकर लिखे गये और समस्याओं की सामाजिक चेतना एवं व्यक्ति की मनोदशा को पूर्ण गहराई के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनका विवेचन करने में उपन्यासकार सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सहारा लेते हैं। ये उपन्यासकार दंगों के दौरान धर्म एवं सम्प्रदाय का सहारा लेने वाली शक्तियों की पहचान करते हैं।

इन उपन्यासों के संदर्भ में हरियश ने लिखा है कि – 'वे उपन्यास विभाजन की राजनीति का तीव्र विरोध करते हैं और स्पष्ट कर देते हैं कि देश की जनता ने विभाजन को स्वीकार नहीं किया। विभाजन की स्वीकृति कांग्रेस और मुस्लिम लीग की उच्चस्तरीय बैठकों तक ही सीमित रह गयी, लेकिन इस स्वीकृति का सबसे बड़ा मूल्य देश की जनता को चुकाना पड़ा, जो पाकिस्तान का अर्थ बिलकुल नहीं समझती थी'। विभाजन की त्रासदी, उसकी पीड़ा से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाला वर्ग मुसलमान हुआ। बलसज कोमल ने लिखा है, "जो मुसलमान विभाजन के दौरान पाकिस्तान चले गए वहां उनको मुहाजिर कहा गया और करांची के स्थानीय लोगों से इन मुहाजिरों का टकराव हुआ।" एक तरफ मुसलमान अपनी जड़ों से कट रहा था। उसका अस्तित्व और अस्मिता खतरे में थी। वहीं दूसरी तरफ भारतीय मुसलमानों को शक की निगाह से देखा जाने लगा, जिनकी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक पहचान गायब होती रही।

देशी–विभाजन के लिए जिन्ना ने 'दो राष्ट्र के सिद्धांत को आधार बनाया जो पूरी तरह से राजनीतिक मामला था। इस सम्बन्ध में वीरेन्द्र कुमार बरनवाल ने लिखा है, "जिन्ना मुसलमानों की समस्या को राजनीतिक दृष्टिकोण से देखते थे उनके लिये सांस्कृतिक पक्ष महत्वपूर्ण नहीं था।" जबकि विभाजन के बाद मुसलमानों को

सांस्कृतिक अस्मिता पर ही सबसे चोट आई। बहुत सारे मुसलमान देश विभाजन देश विभाजन कतई नहीं चाहते थे। वे अपने मुल्क में रहना चाहते थे लेकिन हिंदओं को लगने लगा कि जब मुसलमानों के लिए अलग देश पाकिस्तान बन ही गया तो मुसलमान यहां क्यों रुकेंगे? इसी तरह से पाकिस्तान की सीमा रेखा में आने वाला मुसलमान वहां के हिंदुओं, सिखों को पराया मानने लगा। उसे लगा कि पाकिस्तान केवल और केवल इस्लामी राष्ट्र है। बढ़ती सांप्रदायिकता ने ऐसी आग लगाई कि हजारों घर धू–धू कर जल उठे, लाखों हत्याएं हुईं। स्त्रियों एवं छोटी बच्चियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया, बलात्कार हुए एवं उनके अंग प्रत्यंग काट दिए गए।

विभाजन से सामाजिक अवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई और बदल गई, तो साहित्य इससे कैसे अछूता रह सकता था। विभाजन की पीड़ा को जिस समाज ने भोगा है उसकी अनुभूतियों को, एहसासों और सच्चाइयों को दूसरे तक पहुंचाने की जिम्मेदारी साहित्यकारों ने अपने ऊपर ली। परिणामस्वरूप हिंदी में भी कई कहानियां और उपन्यास लिखे गये जो विभाजन के बाद की स्थितियों – सामाजिक, आर्थिक, राजनीति को दर्शाने में सफल हुए हैं। इन उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिकता की गहराती दरार को पाटने का बखूबी काम किया है। जिसे विभाजन केन्द्रित उपन्यासों के माध्यम से समझा जा सकता है।

## आधा गांव (1966)

राही मासूम रजा का उपन्यास 'आधा गाँव' विभाजन की पृष्ठभूमि में ऐसे प्रश्न और संदर्भ सामने लाता है, जिसका हमारे समाज से गहरा सम्बन्ध है। यह मूल रूप से आंचलित उपन्यास है। इस आंचलित उपन्यास में लेखक अंचल विशेष पर पड़े प्रभावों का मूल्यांकन करता है। विभाजन की त्रासदी उन गांवों के लोगों को भोगनी पड़ी जहाँ पर आबादी की अदला–बदली हुई। यह कहानी है गंगीली गांव की। जो गाजीपुर शहर से 12 मील की दूरी पर स्थित है। इसमें राही ने आधे गांव की कहानी को ही आधार बनाया है। राही के अनुसार – "मैंने पूरे गांव को नहीं चुना, बल्कि गांव के उस टुकड़े को चुना, जिसे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। कथाकार के लिए यह जरूरी है कि वह उन लोगों को अच्छी तरह से जानता हो, जिनकी कहानी सुना रहा है।"

अपनी मिट्टी, अपने लोगों, अपनी परम्पराओं को सभी खूबी और दुर्बलता को जानने के बावजूद प्यार करने वाले भारतीय मुसलमानों की गहन पीड़ा एवं तीव्र व्यथा को जो सशक्त वाणी इस उपन्यास में मिली है वह इसे मानवीय दृष्टि से ऊँचा उठाती है। राजनीति की फांस ने गंगौली के निवासियों को इस प्रकार भ्रमित किया, कि अपने अनकिए गुनाहों के लिए उन्हें प्राणघातक सजाएं मिलीं। गाजिपुर में भी विभाजन से उत्पन्न समस्याएं विकराल रूप में सामने नहीं आ पाई, इसलिए दूर गंगौली में रहने वाले मुसलमान पाकिस्तान के बारे में जिन्ना के बारे में केवल सुनते थे, लेकिन पाकिस्तान क्यों बन रहा है? कहां बन रहा है? कैसे बन रहा है? इन बातों से परिचित नहीं थे, वे तो बस अपनी गंगौली को जानते थे, जो बाप–दादाओं के जमाने से उन्हीं की है।

'आधा गाँव' में लेखक ने शिया मुसलमानों के इस परिवारों की कथा कही है, और यह कथा 1937 से लेकन 1952 तक चलती है। इस साल की प्रमुख घटनाओं – 1937 में प्रान्तीय विधान सभा के चुनाव, भारत छोड़ो आन्दोलन, मुसलमानों के डायरेक्ट एक्शन हैं, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, हिसंक वातावरण, नये संविधान की स्थापना, और जमींदारी प्रथा की समाप्ति के परिप्रेक्ष्य में गंगौली के शिया मुसलमानों की कथा कही गई है। लेखक ने इस उपन्यास में राजनीति का विरोध किया है, कि गंगौली का कोई भी

मुसलमान न तो पाकित्स्तान के पक्ष में है और न ही गंगौली छोड़कर जाना चाहता है। पाकिस्तान की राजनीति को राही मासूम रजा ने अलीगढ़ के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किया है। ये विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किया है। ये विद्यार्थी लीग की राजनीति का प्रचार करते हैं, और गांव की भोली–भाली मुसलमान जनता के दिमाग में यह बिठाने की कोशिश करते हैं, कि यदि पाकिस्तान न बना तो सारे मुसलमानें को हिंदुओं की कृपा पर ही जीना पड़ेगा, इसलिए मुस्लिम लीग को वोट देना उनका मजहबी फर्जी है। लेकिन गांव के किसी भी मुसलमान को पाकिस्तान की राजनीति समझ में नहीं आती और जो लोग इसे समझते हैं, वे इसे गलत बताते हैं। लेखक ने उपन्यास के अनेक पात्रों के माध्यम से इसे स्पष्ट किया है। फुन्नत मियाँ को लगता है कि पाकिस्तान–आकिस्तान पेट भरने के खेल हैं, तन्नू जो दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान सेना में था, पाकिस्तान का विरोध करता है, क्योंकि उसने युद्ध के दौरान होने वाले नरसंहार को अपनी आंखों से देखा है, और वह नहीं चाहता कि वही नरसंहार पुनः दोहराया जाए। उसके अनुसार – "पाकिस्तान की मांग का कोई मतलब नहीं हैं, वह मांग सिर्फ हिंदुओं के प्रति नफरत और आशंका के कारण की जा रही है। वह मानता है, कि खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई भी चीज मुबारक नहीं हो सकती।"

पाकिस्तान का समर्थन करने वाले लोग फुन्नत मियां को यह समझाने की कोशिश करते हैं, कि वे लोग मुस्लिम यूनिवर्सिटी को पाकिस्तान में मिलाने की कोशिश कर रहे हैं, वे कहते हैं कि पाकिस्तान बन जाने से देश में इस्लामी हुकूमत बन जायेगी, लेकिन फुन्नत मियां के गले में यह बात नहीं उतरती, वे कहते हैं ––"कहीं इस्लाम है, कि हुकूमत बन जहिये। रे भाई, बाप–दादा की कबर हियां है, चौक इमामबाड़ा हियां है, खेत–बाड़ी हियां हैं, हम कौनो मुबरुक हैं, कि तोरे पाकिस्तान जिन्दाबाद में फंस जाएं।"

लेकिन पाकिस्तान परस्त लोग यह बताने की कोशिश कर रहे, कि अंग्रेजों का साया हटते ही हिंदू हमें खा जाएंगे। इसलिए हर मुसलमान का कर्तव्य है कि वह मुस्लिम लीग को वोट दें, ताकि हिंदुओं का राज स्थापित न हो सके। लेकिन गंगौली के मुसलमानों को गंगौली में कहीं अंग्रेज नहीं दिखायी देते जिसकी लड़कों ने धूमधाम से चर्चा की थी, और न ही उन्हें हिंदुस्तान और पाकिस्तान में भी जुलाहे हैं, रहेंगे।

लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि गंगौली के मुसलमान राजनीति के इस दांव–पेंच को नहीं जानते, वे सिर्फ गंगौली को जानते हैं, जिसे वे छोड़ नहीं सकते। वे नहीं समझ पाते कि हिंदुस्तान के आजाद होते ही गयावा अहीर, छिछुरिया या लखनवा चमार, हरिया, बरई उनके दुश्मन क्यों हो जाएंगे। ये लोग इतने भोले हैं, कि पाकिस्तान की अवधारणा ही नहीं समझ पाते। लेखक ने छिछुरियां और कुंदन के वार्तालाप से इसे स्पष्ट किया है – "हे बीबी हुई पाकिस्तानवा केहर बनी? छिछुरियां ने यह सवाल किया जो उसे बहुत दिनों से सता रहा था।

'अ का जाने केहर बन रहा है माटी मिला।'

'जउबी गाजीपुर में बन तो हमउं देख लेते।' छिछुरियां ने अपनी धोती के फेंटा से कच्ची तंबाकू की पत्ती निकालते हुए कहा, 'हमन समझत बाड़ी कि ये पाकिस्तान कउनो मस्जिद ओहजिद होई।"

पाकिस्तान के बनने पर मुसलमानों के सामने सबसे बड़ा सवाल यह पैदा होता है, कि वे हिंदुस्तान में रहें या पाकिस्तान जाएं। जो मुसलमान पाकिस्तान बनने पर भारत में रह गये थे, उनकी स्थिति पहले से भी अधिक दयनीय हो गई थी। वस्तुतः मुस्लिम सत्ता जब तक राजकाज चला रही थी, तब तक मुसलमानों को अल्पसंख्यक होने का बोध न हुआ। अंग्रेजों द्वारा मुसलमानों को विशेष सुविधाएं दिये जाने के

कारण भी वे इस तथ्य से परिचित न हो सकें, लेकिन जैसे–जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आती गई, वैसे–वैसे उनके मन में अल्पसंख्यक होने का भाव बढ़ता गया।

इसके साथ–साथ लेखक सामाजिक सम्बन्धों में आए बदलाव को भी रेखांकित करते हैं। उसने स्पष्ट किया है, कि पाकिस्तान से न सिर्फ हिंदू और मुसलमानों के सम्बन्धों में बदलाव आया, बल्कि जीवन के भी तमाम संदर्भो में परिवर्तन आया। हकीम साहब को यह महसूस होता है, कि – "ई पाकिस्तान तो हिंदू–मुसलमान को अलग के रे को बना रहा बाकी हम त ई देख रहे कि ई मियाँ–बीबी, बाप–बेटा, भाई–बहन, को अलग कर रहा है।"

उपन्यास के कई पात्र यह मानते हैं, कि पाकिस्तान बनने से पहले लोग कलकत्ता जाते थे, बंबई और ढाका जाते थे, परन्तु मोहर्रम के अवसर पर जरूर आते थे, लेकिन पाकिस्तान से कोई वापस नहीं आता था तो उन्हें लगता है कि पाकिस्तान क्या कोई मृत्यदेश है। इसलिए गंगौली के मुसलमान अपने बच्चों को पाकिस्तान जाते देखकर दुःखी हैं, इसलिये उपन्यास के अंत में हकीम साहब पाकिस्तान जाने वालों को लानत भेजते हैं – "एक रुदन, तू हमें छोड़ दियो, हम कह रहे कि छोड़ दियो, तून अपने बाप को ... छोड़ दियो .... तो का हमहूँ अपने बाप को छोड़ दब नाखल्क.... ।"

यह स्थिति लगभग प्रत्येक भारतीय मुसलमान परिवार को भोगनी पड़ी जो अपनी जमीन–जायदाद के कारण पाकिस्तान पाकिस्तान नहीं गए, लेकिन अपने बेटों को पाकिस्तान जते देखकर दुःखी हुए। उपन्यास में पाकिस्तान के पक्ष में वही लोग दिखाई देते हैं, कि पाकिस्तान बनने से उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो जाएगी। गांव के जुलाहे, सुन्नी मुसलमान, पाकिस्तान के पक्ष में हैं। इसके विपरीत वे लोग जो जमींदार हैं, आर्थिक रूप से मजबूत है, वे पाकिस्तान जाना नहीं चाहते क्योंकि पाकिस्तान में जमींदार नहीं कहलायेंगे। पर जब जमींदारी खत्म हो गई तो इन लोगों ने आर्थिक आधार की बुनियादें हिल गईं। ऐसी स्थिति में ध्यस्त होते परिवारों की बड़ी–बूढ़ियों के गिड़गिड़ाकर दुआएं मांगी की अंग्रेज लौट जाएं। हर नमाज में कांग्रेस की बहु आएं दी गईं। सदियों से रहने–बसने और जीने वाले मियां लोगों ने देखा कि जिस गांव को वे अपना कहते और समझते आए थे उस गांव से उसका कोई रिश्ता नहीं रह गया।

'आधा गांव', का क्षोभ, बिखराव और मनोन्हास विराट जन समुदाय से जुड़ा है। किसी व्यक्ति या चरित्र को नहीं, बल्कि पूरे गांव को एक चारित्रिक इकाई बनाकर उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में राजनीति के प्रति एक विशेष चौकन्नापन है। जिस कारण 'आधा गाँव' गुजरते हुए समय से अधिक ऐतिहासिक दृष्टि से एक ठहरे हुए समय का गतिशील दस्तावेज बन जाता है।

## झूठा सच (1958–60)

यशपाल का उपन्यास 'झूठा सच' स्वतंत्रता के बाद लिखे गये सर्वाधिक लोकप्रिय और चर्चित उपन्यासों में से एक है। दो खण्डों में लिखे गये इस महाकाव्यात्मक उपन्यास में भारत–विभाजन की पृष्ठभूमि, विभाजन की त्रासदी और उसके बाद के प्रभावों का विषद और जीवन्त चित्रण किया गया है। दो खण्डों में विभाजित उपन्यास के उप–शीर्षकों 'वतन और देश' तथा देश का भविष्य में संकेत मिलता है कि लेखक का उद्देश्य राष्ट्रीय आन्दोदन की पृष्ठभमि में विभाजन की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए राजनीतिक सत्ता के हस्तान्तरण को मुख्य विषय बनाता था। विभाजन की ऐतिहासिक त्रासदी को पूरे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए लेखक ने उन सूक्ष्म

अन्तः सम्बन्धों की तलाश का प्रयास किया है, जिसके कारण इतनी बड़ी त्रासदी हुई।

उपन्यास की कथा का आरम्भ पांचे की गली में रहने वाले तारा और जयदेव पुरी के परिवार से होता है। उपन्यास अपने स्वरूप में महाकाव्यात्मक है, जिसके कारण मुख्य कथा के साथ–साथ कई उपकथाएं चलती हैं, किन्तु उन घटनाआं, उपकथाओं में अद्‌भुत संतुलन है। उपन्यास का मुख पात्र जयदेव पुरी है, जो कि निम्न मध्यमवर्गीय नवयुवक है। वह प्रतिभाशाली साहित्यिक रुचि का व्यक्ति है, जो एम0ए0 करके प्रोफेसर बनना चाहता है, किन्तु सन् 1942 के स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने और जेल जाने की वजह से उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पाती। जेल से छूटने के बाद वह पत्रकारिता के पेशे को अपनाता है, बड़ी मुश्किल से 'पैरोकार'में एक छोटी सी नौकरी प्राप्त कर पाता है। इसी बीच वह उच्च मध्यमवर्गीय लड़की कनक के सम्पर्क में आ जाता है, और दोनों की आत्मीयता धीरे–धीरे प्रेम में बदल जाती है, किन्तु कनक के पिता अपनी उच्च आर्थिक हैसियत की वजह से दोनों के विवाह सम्बन्ध के लिए तैयार नहीं हैं। पुरी की बहन तारा मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित प्रगतिशील लड़की है, अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह संघर्षशील है। वह असद से प्रेम करती है, उससे विवाह करना चाहती है, जो कि एक मुसलमान लड़का है। किन्तु असद की दुर्बलताओं की वजह से ऐसा नहीं हो पाता है, दूसरी तरफ प्रगतिशील होने के बावजूद जयदेव पुरी भी मानसिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं हो पाता है, जो पहली ही रात में तारा का विवाह सोमराज नारम के दुष्ट व्यक्ति से हो जाता है, जो पहली ही रात में तारा को अपमानित एवं प्रताड़ित करता है। संयोग से उसी रात साम्प्रदायिक दंगा बहुत तेज हो जाता है। तारा घर में भागने की चेष्टा में एक मुस्लिम गुंडे के हाथ पकड़ी जाती है। वहाँ से वह एक धार्मिक कट्‌टरवादी मुस्लिम हाफिज के घर पहुंचा दी जाती है। हाफिज तारा का धर्मान्तरण करके अपनी बहू बनाना चाहता है, लेकिन तारा धर्मान्तरण स्वीकार नहीं करती है। अनेक विषम परिस्थितियों से जूझती हुई तारा एक सहायता समूह के जरिए अमृतसर पहुंच जाती है। दूसरी तरफ पुरी नौकरी की तलाश में कनक का पत्र लेकर नैनीताल पहुँचता है। इन्हीं घटनाओं के बीच देश का विभाजन हो जाता है। पुरी अपने परिवार की तलाश में लाहौर जाना चाहता है, किन्तु नहीं जा पाता है। जालंधर में उसकी मुलाकात कांग्रेसी नेता सूद से हो जाती है। उसकी सहायता से वह प्रेस का मालिक बन जाता है। यहीं उर्मिला के आकर्षण में वह पड़ता है। कनक–उर्मिला के बीच के सम्बन्धों में वह झूलता रहता है। बाद में बदली हुई परिस्थितियों में पुरी का कनक से विवाह हो जाता है। लेकिन कुछ ही वर्षो में सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं।

उपन्यास की मुख्य कथा के बीच में अनेक उपकथाएं चलती हैं, जिसमें विभाजन और विस्थापन की समस्या को गहराई के साथ उठाया गया है। लुटे–पिटे शरणार्थियों की समस्याओं को अत्यधिक गहराई से यशपाल ने उपन्यास में चित्रित किया है, जो बंती के रूप में एक ऐसे स्त्री चरित्र. का निर्माण यशपाल ने किया है, जो विभाजन के दौरान स्त्री जीवन के यथार्थ का एक अलग पहलू उजागर करता है।

झूठा–सच उपन्यास में यशपाल ने स्त्री जीवन, उसके संघर्ष के विविध रूप, विभाजन की राजनीति, विभाजन की त्रासदी के साथ ही स्वतंत्र भारत में कांग्रेसी नेताओं के काइयाँपन को भी उजागर किया है। नारी संघर्ष के चित्रण के लिए यशपाल ने तारा का चुनाव किया है। दिल्ली पहुँचने के बाद तारा की परिस्थितियों में परिवर्तन होता है। वह नारी कल्याण केन्द्रों की अध्यक्षता के पद पर अंडर–सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हो जाती है ऑफिस में ही उसके पूर्व पति सोमराज से उसका सामना हो जाता है। तारा डॉ. प्राणनाथ

से विवाह कर लेती है। प्रतिशोध की आग में जलता हुआ सोमनाथ पुरी की सहायता से तारा को परेशान करने का प्रयास करता है, किन्तु सफल नहीं हो पाता।

तारा स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियों की उपज हैं दूसरी तरफ कांग्रेसी मंत्री सूद की सत्रह हजार वोटों में हार और "गली में शोर है, सूद पुरी चोर है" — नारों की गूंज से देश की बदलती राजनैतिक स्थिति का चित्रण किया है। जहाँ देश की राजनीतिक शक्ति स्वार्थी नेताओं के हाथ से निकलकर जनता के हाथ में जा रही थी, जिसकी घोषणा डॉ. प्राणनाथ करते हैं — "गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।"

इस तरह डॉ. नाथ की घोषणा के साथ उपन्यास समाप्त होता हुआ यह संकेत देता है कि लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति जनता के हाथ में है। यह उपन्यास पाठक के तन पर एक सकारात्मक प्रभाव छोड़ते हुए समाप्त होता है।

## तमस (1973)

भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'तमस' उपन्यास मूलतः विभाजन को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों की एक महत्वूपर्ण कड़ी है। 'तमस' का प्रकाशन 1973 ई0 में हुआ, लेकिन देशकाल की दृष्टि से यह उपन्यास विभाजन पूर्व पंजाब की उथल—पुथल और साम्प्रदायिक दंगों का है। यह वह समय है, जब देश में विभाजन के पूर्व साम्प्रदायिकता अपनी चरम अवस्था में थी, कैबिनेट मिशन योजना के अनसार केन्द्र में अन्तरिम सरकार बन चुकी थी। पं0 जवाहर लाल नेहरू इस सरकार के प्रमुख थे। लार्ड माउंटबेटन विभाजन के अनुकूल वातावरण बनाने के लिए प्रयत्नशील थे।

दो खंडों में विभाजित इस उपन्यास की कथावस्तु का आरम्भ नत्थू चमार द्वारा सुअर मारने की प्रक्रिया से होता है। मुरादअली नामक एक साम्प्रदायिक व्यक्ति सलोतरी के लिए (डाक्टरी जरूरत) एक मरे हुए सुअर की माँग करता है। नत्थू बहुत मुश्किल से सुअर मार पाता है, जिसे जमादार अपने छकड़े पर लादकर ले जाता है, मस्जिद की सीढ़ियों पर एक मरा हुआ सुअर पड़ा होने की खबर जब पूरे कस्बे में आग की तरह फैल जाती है, जब नत्थू को सुअर मरवाने के वास्तविक उद्देश्य के बारे में जानकारी होती है। मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर के मरे होने की खबर में साम्प्रदायिक शक्तियों को भड़का दिया। प्रतिक्रिया स्वरूप सुअर की मौत का बदला नहीं के खून से लिया जाता है। इस घटना से साम्प्रदायिक दंगों की आहट मिलने लगती है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों अपनी—अपनी सुरक्षा की तैयारी प्रारम्भ कर देते हैं। स्थिति धीरे—धीरे भयावह हो जाती है लेकिन सत्ता वर्ग अधिकारी अभी सब कुछ देख रहे हैं। उसी रात मंडी में आग लगा दी जाती है। नफरत की आग पूरे कस्बे में फैल जाती है।

उपन्यास के प्रथम खंड में साम्प्रदायिकता वातावरण की पूरी पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। दूसरे खंड में सम्प्रदायिकता के दुष्प्रभावों का चित्रण साहनी में किया है। ढोह इलाही बख्श के नाम के छोटे से देहात के सिख दम्पत्ति हरनाम सिंह और उसकी पत्नी वंतो बलवाइयों के आने की सूचना पाकर थोडी बहुत पूँजी—जेवर और बंदूक लेकर दुकान में ताला लगाकर निकल जाते हैं। रात भर दहशत में चलते हुए एक मुस्लिम बहुल इलाके ढोक मुरीदपुर पहुँचते हैं, जहाँ एक मुस्लिम स्त्री उन्हें शरण देती है, जिसका पति संयोग से हरनाम सिंह का पुराना जा—पहचान वाला निकलता है। जिसकी वजह से उनके प्राण सुरक्षित है। हरनाम सिंह का पुत्र इकबाल सिंह भागते हुए पकड़ा जाता है। उसको इस शर्त पर जिंदा रखा जाता है कि, वह इस्लाम कबूल लेगा।

बाद में वह इस्लाम कबूल भी करता है। हरनाम सिंह की बेटी जसवीर गाँव के सिखों के साथ गुरुद्वारे में शरण लेती है। बाहर से आने वाले बलवाइयों की वजह से साम्प्रदायिक दंगे इतने तेज हो जाते हैं कि लोग अपने घर–द्वार छोड़कर सुरक्षित ठिकानों के लिए पलायन कर जाते हैं। अपनी इज्जत बचाने के लिए स्त्रियां कुएं में कूद कर जान दे देती है। कहीं गुरुद्वारे में युद्ध परिषद की बैठक चल रही है, तो कहीं हिन्दू साम्प्रदायिकता को भड़काने के लिए स्वामी जी भाषण दे रहे हैं। राजनैतिक पार्टियां शान्ति सभाएं कर रही हैं, और अंग्रेज अधिकारी हाथ पर हाथ धरे साम्प्रदायिक दंगों का तमाशा देख रहे हैं। सैनिकों का सक्रियता में लड़ाई बन्द होती है, रिलीफ कमेटी बनती है, शरणार्थी कैम्प बनते हैं, नुकसान की भरपाई के लिए आंकड़े इकट्ठे किए जाते हैं, अमन कमेटी बन गई है, और अमन कमेटी की बस में सबसे आगे बैठकर एकता का नारा लगाने वाला वही मुराद अली है, जिसने नत्थू चमार से सुआर मरवाकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकवाया था।

उपन्यास में साहनी जी ने स्वतंत्रता के ठीक पहले के भारतीय समाज में फैली सांप्रदायिकता, हिंसा, नफरत और विभाजन की राजनीति का चित्रण तो किया ही है। एक ऐसे वर्ग चरित्र को भी उभारा है जो अपनी राजनीति चमकाने के लिए हिंसा और दंगे का सहारा लेता है उपन्यास में वर्णित इस जिले में कुछ विभिन्न तरह की शक्तियां कार्य करती दिख पड़ती हैं। कम अधिक मात्रा मे हिंदू–मुस्लिम दंगों के समय सारे देश में यही शक्तियाँ कार्यरत थीं। इनमें कांग्रेस, लीग, हिन्दू महासभा, कम्युनिस्ट, हिंदू, मुसलमान, और सिख हैं। इस पूरे खेल में अग्रेज अधिकारी जिनके हाथों में सुरक्षा के सारे सूत्र थे, वे बड़ी ही तटस्थता से दर्शक बने हुए थे। क्योंकि वह उनका देश–समाज नहीं था। गाँव जलते हैं, तो जले क्योंकि रिचर्ड्स साफ–साफ कहता है – "यह मेरा देश नहीं है, न ही ये मेरे देश के लोग हैं।"

स्पष्टतः रिचर्ड्स ब्रिटिश सरकार के एक ईमानदार प्रशासक के रूप में सामने आया है। उपन्यास, में उसके वक्ताओं से यह पता चलता है, कि अंग्रेज दो वर्गो के तनाव को किसी भी स्तर पर कम करने के लिए तैयार नहीं है। हाँ, काफी कुछ हो जाने के बाद बहुत कुछ करने का नाटक वे जरूर करते हैं। 'तमस' उपन्यास की यह विशेषता है, कि इसमें अनेक चरित्र हैं, किंतु एक भी केंद्रीय चरित्र नहीं है, उपन्यास प्रधान पात्र 'आतंक' है, जो प्रारम्भ से अंत तक छाया हुआ है। उसे ही उपन्यास का नायक कहा जा सकता है, उसे लेखक ने उसकी सारी भयावहता के साथ सृजित किया है।

## जुलूस (1965)

फणीश्वर नाथ रेणु का उपन्यास 'जुलूस' विभाजन से संबद्ध उपन्यासों की श्रृंखला में एक मात्र ऐसा उपन्यास है, जिसकी कथा पूर्वी पाकिस्तान यानी बंगाल के शरणार्थियों पर केंद्रित है। देश–विभाजन के परिणामस्वरूप बंगाली विस्थापितों को बिहार के पूर्णिया जिले के गोडियर गांव में बसाया जाता है। जिला भैमन सिंह के गाँव जुमापुर के विस्थापितों को बसाते हुए इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि, उन्हें खाने के लिए पेट भर मछली–भात मिल सके और उपजाने के लिए धान–पाटा। चूँकि इस बस्ती का उद्घाटन राज्य के पुनर्वास उपमंत्री मुहम्मद इस्माइल नबी ने किया था, इसलिए इसे 'नबीनगर' भी कहा जाता है। लेकिन पूर्वी पाकिस्तान से आने के कारण स्थानीय लोग इस बस्ती को 'पाकिस्तानी टोला' कहते हैं, और उनका विश्वास है कि इन्हें पाकिस्तान छोड़ते समय गोमांसा जरूर खिलाफ गया होगा, इसलिए विस्थापितों को स्थानीय लोग अपवित्र मानते हैं।

इसी द्वन्द्व को लेकर उपन्यासकार रेणु ने कथानक का ताना–बाना बुना है।

अपना वतन छोड़कर पूर्णिया जिले में बसने वाले इन विस्थापितों को पडोसी गाँव के लोग सहजता से स्वीकार नहीं कर पाते। विस्थापित बस्ती के 'नोबीनगर' नाम को छोड़कर उसे 'पाकिस्तान टोला' तो कहते ही हैं, टोले की नाम की तख्ती को गोड़ियर टोले के चरवाहे उखाड़कर फेंक देते हैं। लेकिन समय के साथ और उपन्यास की नायिका पवित्रा के प्रयासों से धीरे–धीरे भेदभाव समाप्त हो जाता है। जुमापुर के शरणार्थी नोबीन नगर को अपने अनुकूल बना लेते है। सब कुछ उन्हें जुमापुर जैसा लगने लगता है। बस नहीं मिल पाता है तो 'अपने मन का मानुस'। इसलिए काला चाँद की माँ ने पवित्रा से पूछा था कि ...... "दीदी ठाकुरन एक बात पूछँ।" बुरा न मानिएगा। आप पढ़वा पंडित हैं। भूल–चूक हो माफ कर दीजिएगा। पूछती हूँ सब कुछ तो मिला। अपने देश का अन्न, चास–पास, मदाद्व तरी–तरकारी सब कुछ अपने जुमापुर गाँव जैसा मिलता था, यहाँ भी मिलता है, हवा पानी भी वही है, लेकिन मन के मानुस के जैसा कोई यहाँ नहीं? तुमने एक बार कहा था" – "यहाँ भी सैकड़ों कासिम हैं, एक भी विनोद नहीं?"

काला चाँद की माँ ने जैसे पवित्रा की दुखती रग पर हाथ रख दिया हो लेकिन पवित्रा ने अपने दुख को संभालकर कहा ... "काला की माँ, यहाँ मन का मानुस भी मिला है।" जुमापुर में उसने एक जुलूस देखा था – शैतानों का जुलूस जिसमें कासिम भाले की नोक पर विनोद का कटा हुआ सिर लेकर सबसे आगे था। नोबीन नगर में भी वह शैतानों की जुलूस है, और पवित्रा जानती है, कि नरेश के रूप में विनोद दुबारा मिल तो गया है, पर कासिम उसे जिंदा नहीं छोड़ेगा।

देश और वतन की इस गाथा को रेणु ने बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से जीवंत बनाया है, कथांचल की अन्य विशेषताओं के साथ वहाँ की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक स्थितियों का चित्रण उन्होंने निर्लिप्त किंतु सहानुभूति दृष्टि से किया है। विभाजन के बाद पनपने वाले भाई–भतीजावाद, रिश्वत, खुशामदगीरी, ओर अवसरवादिता का भी उन्होंने बड़ा व्यंग्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। रेणु की इस कृति से स्पष्ट होता है कि अंचल की अधिकांश समस्याएं राष्ट्रप्रेम तथा विश्वबन्धुत्व की भावना से सुलझ सकती है। उपन्यास की नायिका पवित्रा को दुःख इसी बात का है कि इन लोगों को अपने गांव की मिट्टी से मोह क्यों नहीं है। वे यहां के अन्य लोगों और पशु–पक्षियों से प्यार करें। वह उन्हें विश्वबंधुत्व भावना से परिचत कराती हैं .............. 'जानते हो! ठाकुर (भगवान) का आदेश है, यहां की मिट्टी को प्यार दो – जुमापुर और नवीन नगर एक ही है।"

उपन्यास के अंत में पवित्र का वक्तव्य सामाजिक एकता को स्पष्ट करता है। 'मैं अकेली नहीं। मैं निस्संग नहीं। मैं कहीं निर्जन में नहीं। मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ। इन आत्मीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता को फिर से पनपाऊँगी। अपरिचय, अजनबीपन, उदासीनता, अकेलापन, आत्मकेन्द्रित, विच्छिन्नता को दूर करके भूल–भटके लोगों को अपने लोगों के पास लौटाकर लाना होगा। मैं अपनी सत्ता को इस समाज में विलीन कर रही हूँ। लोक संस्कृतिमूलक समाज के गठन के लिए।"

## लौटे हुए मुसाफिर

विभाजन को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों में कमलेश्वर का उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' अपेक्षाकृत अन्य उपन्यासों से बहुत छोटा है। इसे लघु उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। उपन्यास का कथानक छोटा होते हुए भी सघन है, एक छोटी सी बस्ती में विभाजनपूर्व, विभाजन के समय

तथा विभाजन के बाद जो सूक्ष्म परिवर्तन हुए उसका वित्रण इस उपन्यास में है। उपन्यास की पहली ही पंक्ति में कमलेश्वर ने इसका निष्कर्ष समाहित कर दिया है। जहाँ वे लिखते हैं ... "सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।" इस कथन से स्पष्ट है, कि कमलेश्वर स्वतंत्रता के कई वर्षो बाद की बस्ती की अवस्था से उपन्यास का आरंभ करते हैं। आज इस उज़डी हुई बस्ती को देखकर नसीबन का मन से उठता है .... "आज भी लगभग वैसा ही है, जैसा आजादी के पहले था। सिर्फ इस बस्ती की उदासी ने जकड़ लिया है। ठहरी शामें होती हैं और रुका हुआ वक्त है।"

आज इस बस्ती को देखकर किसी को गुमान नहीं हो सकता कि कभी यहाँ इतनी रौनक बसती थी और दोनों संप्रदायों के लोग यहाँ प्रेम और विश्वास से मिलजुलकर रहते थे, एक7दूसरे के त्यौहारों में भाग लेते थे। राजनीति से बेखबर यह लोग एक–दूसरे के सुख–दुख में सम्मिलित थे। दिन बीतते गए। अंग्रेजों के आने के साथ छोटे–मोटे कार्यालय खुले, नौकरियों के लिए शिक्षित वर्ग यहाँ आया यह तबका अपने–अपने घरों में हिंदू या मुसलमान था, लेकिन साब के सामने सिर्फ नौकर था। भीतर ही भीतर अंग्रेजों के विरोध में आग सुलग रही थी। सन् बयालीस के आंदोलन में हिंदू–मुसलमान दोनों ने भाग लिया था। और इसके कुछ ही महीनों बाद बस्ती के मुसलमानों के बीच जिन्ना साहब की चर्चा हुई, और फिर 1945 का जमाना आया, देखते–देखते सब कुछ बदल गया।

इस उपन्यास में कथा का मुख्य केंद्र चिकवों की बस्ती है। इसका एक इतिहास है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में कभी यहाँ के लड़के बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते थे। लेकिन जैसा कि उपन्यासकार ने पहले ही बताया सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को तबाह किया। मुस्लिम लीग के समर्थकों में जिसमें मकसूद और यासीन अलीगढ़ से आकर पाकिस्तानी विमर्श खड़ा करते हैं। और 16 अगस्त, 1946 के दिन यानी डारेक्ट एक्शन डे के दिन एकदम से माहौल बदल जाता है। दिनों–दिन हिंदू अधिक हिंदू होते जा रहे थे और मुसलमान अधिक मुसलमान। आपसी विश्वास की दीवारें ढहने लगती है, और भाईचारा समाप्त हो जाता है। सांप्रदायिक दंगों का प्रभाव बस्ती पर भी पड़ने लगता है। और देश विभाजन के साथ ही विस्थापन की त्रासदी भी सहनी पड़ती है। अमीर लोग तो पाकिस्तान पहुँच जाते हैं, लेकिन गरीब मुसलमान बस्ती से पलायन करके भी पाकिस्तान पहुँच नहीं पाते। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में वे बिखर कर रह जाते हैं। ऐसे ही गरीब मुसलमानों के विस्थापन की त्रासदी का चित्रण कमलेश्वर ने इस उपन्यास में किया है, जो उस दौर के भारतीय समाज का यथार्थ था। और आज सन् 1961–62 में कुछ नौजवान फिर इस बस्ती की ओर वापस लौट रहे हैं, ये वे ही नौजवान हैं, जिनके माँ–बाप पाकिस्तान और संपन्नता के सपने लेकर इस बस्ती को छोड़कर चले गए थे, किंतु पाकिस्तान पहुँच नहीं सके हैं, उन्हीं के लड़के आज वापस लौटे हैं, इनका बचपन इसी बस्ती में बीता था। नसीबन उन सभी को देखकर बहुत खुश है, वह लौटे हुए मुसाफिरों को उनके टूटे–फूटे धरों तक पहुँचाती है।

स्पष्ट है कि कमलेश्वर विभाजन की पृष्ठभूमि में एक बस्ती के सूक्ष्म परिवर्तन की कथा प्रस्तुत कर रहे हैं। परिवर्तन के कारणों की खोज एवं परिवर्तन की भयावह प्रक्रिया को भी उन्होंने स्पष्ट किया है। वस्तुतः कमलेश्वर का यह उपन्यास मानव समाज के कुछ शाश्वत मूल्यों, समसयाओं तथा मानव हृदय की सूक्ष्म प्रवृत्तियों से संबंध रखता है। इसी कारण यह उपन्यास आज भी नया है, जितना पहले था और तब तक रहेगा जब तक विस्थापितों को उखाड़कर सांप्रदायिक और प्रतिगामी शक्तियाँ उन्हें मुसाफिर बना देंगी।

 ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

## काले कोस (1957)

बलवन्त सिंह का उपन्यास काले कोस की कहानी पंजाब के विभाजन से कुछ समय पूर्व शुरू होकर दंगों के बीच समाप्त होती है। उपन्यास विभाजन से पहले के पंजाब के एक खूबसूरत गांव ओर ग्रामवासियों को केंद्र बनाकर लिखा गया है। "वहाँ मीलों तक फैले हुये हरे–भरे खेत उनमें जगह–जगह रू–रू करते हुए रहट, सुबह के चमकीले प्रकाश में दमकते हुए पानी के जौहड़, शीशम, फुलाह और बबूल"के पेड़ों के सिलसिले अजब बहार दिखाते थे।" इस गांव के सभी जातियों के लिए मिल–जुलकर एक संयुक्त परिवार की भांति रहते हैं। एक दूसरे के सुख–दुख में बराबर की भागीदारी निभाते रहे हैं। सदियों से अलग–अलग धर्म के लोग एक साथ मिल–जुलकर रहते आए। आपसी सद्‌भाव से धीरे–धीरे सांझा संस्कृति का विकास हुआ। फुल्लाँवाले पोर की दरगाह पर हर साल एक शानदार मेला लगा करता है। जिसकी तैयारी और चहल–पहल मेला लगने के कई दिन पहले ही शुरू हो जाती है। ऊँचे–ऊँचे पेड़ों की घनी छाया तले प्रकाश के शांत फैलाव में लगे हुए मेले में तडपती और ललकारती हुई जिंदगी के भांति–भांति के दृश्य छिपे रहते हैं। इस स्वप्निल वीराने में चाँद की मद्धिम रोशनी तले मधुर अलगोजों और रसीली बाँसुरियों के स्वर दिल में उतर जाते हैं। हीर गाने की सुरीली आवाजें कानों में अमृत घोल देती हैं। पेशौरा सिंह की बैठक और नम्बरदार मियाँ दिल मुहम्मद के बारे में चार गांव के प्रमुख व्यक्तियों और अन्य साधारण लोगों की महफिल जमती है, और फिर दुनिया भर के गंभीर और अगंभीर प्रश्नों पर वाद–विवाद होता है। सांझा संस्कृति के साथ–साथ कहानी में गांधी जी का भी प्रस्ताव दिखता है।

पेशौरा सिंह का बेटा सूरज सिंह बंबई और लाहौर में शिक्षा प्राप्त करने के बाद अब गांव में ही रहकर गांव की तरक्की के लिए योजनाएं बनाता है। लाहौर मेडिकल कालेज की एक छात्रा महेन्द्र और उसकी सहयोगिनी है। वे दोनों मिलकर गांव के विकास और शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए गांव में ही रहकर हास्पिटल और स्कूल खोलने के प्रयास करते हैं। वे लोग छोटे पैमाने पर अपना काम शुरू करते है। काफी परेशानियों और बाधाओं के बाद उन्हें और उनके प्रयासों को गांव वालों के बीच स्वीकृति मिलने लगती है। उनकी झोपड़ियों में पढ़े–लिखे और गांव के लोगों की महफिलें भी जमने लगती हैं, जिनमें देश की वर्तमान स्थिति पर बहस होती है, किसानों और मजदूरों की समस्ययाओं पर बातचीत होती है, इनकी झोपड़ियों और बहसों में हिंदू–मुस्लिम लोगों की बराबर की भागीदारी होती है, आपस में किसी तरह की कटुता नहीं होती। लेकिन जैसे–जैसे देश का माहौल बदलता है गाँव का माहौल भी बदलने लगता है। आसपास के इलाकां में सांप्रदायिकता दंगे शुरू हो जाते हैं। अब तक साथ मिलकर बैठने वाले हिंदू, सिख, मुसलमान अपनी–अलग बैठकें करनी शुरू कर देते हैं।

सार्वजनिक दंगे और चार गाँव के पाकिस्तान में चले जाने की वजह से यहाँ से हिंदू, सिक्खों के पलायन की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। लेकिन सदियों के रिश्ते7नाते एक झटके में टूटते हुए भी मानवता छिन्न–भिन्न नहीं हो पाती। सांप्रदायिकता के इस माहौल में मियाँ दिल मोहम्मद, बेली शाह, अल्लादिता अराई जैसे लोग अपना विवेक नहीं खोते। इनके प्रयासों से ही गाँव के सारे मुसलमान अपने साथ हिंदू और सिक्खों की रक्षा करते हैं। उनकी कोशिश यही रहती है कि .... "यहाँ खून–खराबा न हो। हम लोग पहले जैसे रहते थे वैसे ही अपने कामों में लगे रहें। वही प्यार और वही भाईचारा बना रहना चाहिए। अगर दोनों कौमे लड़ पड़ी तो हमारी ये खूबसूरत बस्तियाँ खून और आग की लपेट में आ जाएंगी।" लिहाजा बाहरी मुस्लिम बलवाइयों से चारगाँव के हिंदू, सिक्ख भाइयों को पूरी

ईमानदारी और जिम्मेदारी से सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाने में मदद करते हैं।

लेखक ने स्थितियों के विरोधाभास द्वारा परिस्थितियों की विडंबना को प्रभावशाली ढंग से उभारा है। लेखक ने सांप्रदायिक ताकतों का विरोध किया है, और मानवीय पक्षों को बहुत ही संवेदनशीलता से चित्रित किया है। तमाम प्रतिगामी ताकतों के बीच भी मानवीय गरिमा और व्यक्तित्व वाले पात्र उपन्यास को धार्मिक बनाते हैं और लेखकीय उद्देश्य से पूरा करते हैं।

## कितने पाकिस्तान (2000)

इस उपन्यास की शुरुआत एक अंखुजाती प्रेम कहानी से होती है। विद्या फतेहपुर से आती थी और अदीब मैनपुरी से। दोनों कानपुर स्टेशन से सवार लोकर इलाहाबाद जाते थे साथ–साथ। छुट्टियों में कानपुर तक साथ–साथ लौटते थे। एक समय ऐसा आया कि विद्या ने कहा – "शायद आगे की पढ़ाई के लिए मैं अगले वर्ष व आ सकूँ। घर वाले यही चाहते हैं।" विद्या फतेहपुर की गाड़ी बदलने के लिए कानपुर उतर गई। पुल से उतरते समय उसने अपना रुमाल गिरा दिया। अदीब की ट्रेन चल चुकी थी। वह न गाड़ी छोड़ सका न रूमाल उठा पाया। इस आपाधापी की दुनिया में पता ही नहीं कितने अरमानों के पर कतर जाते हैं। पाकिस्तान बन चुका था। पाकिस्तान जाने वाले लोगों की भीड़ से गाड़ी ठसाठस भरी हुई थी। पता नहीं कितने लोगों का वतन और देश बदल रहा था। अदीब जब भी कानपुर से गुजरता तो उसकी स्मृतियों में रूमाल गिरता रहता था।

कई नौकरियाँ छोड़ते–बदलते अदीब मुंबई जा पहुँचता है। वहाँ उसे एक चिट्ठी मिलती है, जिसमें गालिब की गजल है। अदीब को खत के मजबन में विद्या की अनुगूँज सूनाई पड़ती है। अदीब उस खत के बारे में सोच ही रहा होता है कि – हुआ यह था कि ....। उसके अर्दली महमूद ने उसकी आवाज काटते हुए कहा – "हुआ यह नहीं था, सर। पहले सुनिए, हुआ क्या है।" टेलीप्रिंटर के खुरदरे कागजात ने बताया कि – "कारगिल के इलाके में घुसपैठियों के नाम पर फिर पाकिस्तानी फौजियों ने अघोषित आक्रमण कर दिया है।" "पाकिस्तानियों ने सन् 1972 के संधिपत्र का उल्लंघन किया है।" अदीब समाचार पत्र के मुख्यपृष्ठ के लिए संपादकीय बोल रहा है, उधर कारगिल में पाकिस्तानी तोपें बम बरसाती रही हैं। हमारे देश के विदेश मंत्री जसवन्त सिंह इस घटना से बेखबर मध्य एशिया के देशों से मित्रत जोड़ रहे हैं। रक्षामंत्री पाकिस्तानी गोलीबारी का बयान अनसुना कर नाटो–अमेरिका हले के विरुद्ध अपना बयान दर्ज कराने में व्यस्त है। स्क्वाइन लीडर अजय आहूजा मारा गया, 12 जवान लापता हो गए, 29 जवान शहीद हो गये। प्रधानमंत्री कानों ते तेल डाले बैठे हैं। शहीद हुए सैनिकों के परिवार को सांत्वना देने कोई नेता नहीं जाता है।

अर्दली महमूद समय की निरंतरता में छलांगे लगाता रहता है। वह क्षण में सतयुग में जाता है, क्षण में त्रेता या द्वापर युग में। अथवा पूर्ण इतिहास काल में पहुँच जाता है। अजीब कारगिल के सिलसिले में मौत के बारे में सोचने लगता है। उसे भारत का महाभारत, आर्यांना का डेरियस और यूनान का मैराधन याद आते हैं। इसका सिलसिला यहीं टूट जाता है, और महमूद पिछली शताब्दियों में चला जाता है। झंझावात और काली आंधियों के प्रतीकों से सारी क्रूरताएँ जुड़ी हुई हैं। अदीब चीखा – महमूद। महमूद रामचंद्र के जमाने से लौट रहा था। आँधियाँ शम्बूक वध के कारण चल रही है। महमूद कभी–कभी ऐतिहासिक गलतियाँ कर बैठता है। वह युग का हेर–फेर कर देता है। अहिल्या की कथा वैदिक युग की नहीं, पैराणिक युग की है। जो भी हो अदीब अत्याचार के प्रतिपक्ष में खड़ा है।

पूरी दुनिया में युद्धों से हो रही मारकाट और मृत्यु से आहत मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहता है। सारी सभ्यताओं के देवता मनुष्य की मृत्यु के विजय के खिलाफ है। परन्तु हिती सभ्यता का सम्राट गिलगमेश मृत्यु पर विजय प्राप्त करने या उसकी दवा खोजने निकल पड़ता है। वह निश्चय करता ।है – "मैं पीड़ा से लड़ूँगा . ... यातना सहूँगा ..... कुछ भी हो मैं मृत्यु को पराजित करूँगा.... मृत्यु से मुक्ति की औषधि खोज लाऊँगा।" सुमेरी सभ्यता का देवता उसे नष्ट करने के लिए आकाश–पुत्र एकन्दु को भेजता है। किंतु परम सुन्दरी देवदासी रूना उसे अपने प्रेम से सम्राट के पक्ष में कर देती है। गिगमेश की रक्षा में वह मारा जाता है। किंतु गिलगमेश मृत्यु की दवा की तलाश में निकल पड़ता है। वह तो अभी दवा लेकर नहीं लौटा है किन्तु रूना उसकी आवाज ले आई है।

अदीब का समय की निरंतरता में उड़ते रहना पहले ही स्पष्ट हो चुका है। समय की कूद–फाँद का भी कोई नियम नहीं है। वह माउन्ट बेटन के कमरे में जा घुसता है। माउन्ट बेटन और उसकी बीबी एडबिना के साम्राज्यवाद, विभाजन और ईसाई करुणा से संबंधित संवाद को बहुत बारीकी से दर्ज करता है। भारत विभाजन पर ब्रिटिश साम्राज्य की भूमिका, कांग्रेस की भुमिका, जिन्ना की भूमिका की तहकीकात करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सत्ता सुख की कामना सब में थी। केवल महात्मा गांधी विभाजन के विरुद्ध थे। "गलत फैसले से हिंसा उपजती है और हिंसा से अपसंस्कृति और रक्तपात।" यह गांधी की आवाज की प्रतिध्वनि थी। पाकिस्तान एक गलत फैसला था। फिर से दस्तके होती हैं – रक्तस्नात दस्तकें। जगह–जगह दंगों में मारे गये व्यक्तियों की दस्तकें। बाबरी मस्जिद–रामजन्मभूमि की दस्तकें–भागलपुर, मेरठ अहमदाबाद बड़ौदा, कानपुर आदि दंगों में मारे गए व्यक्तियों की दस्तकें विभाजन के फलस्वरूप जो खून–खराबा हुआ वह दुनिया के इतिहास में बेमिसाल है। यदि विभाजन के स्थान पर गृह–युद्ध होता तो इतना रक्तपात न बहा होता। विभाजन ने हिंदुओं–मुसलमानों के बीच वैमनस्य की गहरी खाई खोद दी। मुसलमानों का कहना था कि चूँकि अंग्रेजों ने यह राज्य हमसे लिया था, इसलिए हम को ही सौंपना चाहिए था। त्रिशूलधारी के मतानुसार हमारी गुलामी बाबर से शुरू होती है। बाबरी मस्जिद उसी ने बनवाई है – गुलामी का स्मारक, अर्थात् यह हिंदुओं का देश है, मुसलमान विदेशी हैं, आक्रामक है।

अदीब की अदालत में बहुत सारे ऐतिहासिक व्यक्ति और उनकी प्रामाणिकता के लिए इतिहास भी तलब किए जाते हैं। बाबर से लेकर आलमगीर औरंगजेब और दाराशिकोह तक। इसी बीच अदीब रेगिस्तान में भी पहुँचता है और तमाम सारे लेखकों से मिलता है। रेगिस्तान लेखकों की शरणस्थली है। इतिहासकारों द्वारा साम्प्रदायिकता की तहकीकात करते हुए अदीब बाबरी मस्जिद मस्जिद के निर्माण से भारत विभाजन तक की यात्रा करता है। इन सब बहसों से ऊबा हुआ अदीब अपनी जिंदगी में वापस जाना चाहता है और सलमा को ले आता है। अदीब महसूस करता है कि औरत जिंदगी होती है। उसके अभाव में दुनिया का उपवन सूख जाता है जीवन के रंग रेत में बदल जाते हैं सलमा अदीब का प्यार साम्प्रदायिक नफरत की दीवार ढहा देता है। हिंदुओं–मुसलमानों के बीच अनुभूतिपरक संबंध बनाता है। अदीब अपनी प्रेमिका सलमा को लेकर घूमता–घामता मोरिशस पहुँच जाता है और गिरमिटिया से लेकर साम्राज्यवादियों के अत्याचार और शोषण के इतिहास की भी खबर लेता है।

दुनिया की त्रासदी पर बहस करते–करते अदीब की जिंदगी खुद त्रासद हो जाती है। जिस सलमा के साथ अदीब जीवन का आनन्द ले रहा था, वह अदीब को अलविदा कहते हुए अपने बेटे के साथ पाकिस्तान चली जाती है। अदीब को

इसका गहरा सदमा लगता है। इसके बावजूद वह थोड़ी देर तक विभाजन रक्तपात, जिन्ना, जिया, मैकाले, फोर्ट विलियम कालेज के इतिहास में जाता है। लेकिन वहाँ उसे चैन नहीं मिलता है। अदीब अब विद्या के साथ जीना चाहता है। विद्या पाकिस्तान पहुँच जाती है और उसका निकाह हो जाता है। अदीब को दिल का दौरा पड़ता है। पहली बार हिरोशिमा–नागासाकी को देखकर दूसरी बार पोखरन के अणु परीक्षण से, तीसरी बार बलूचिस्तान के चगाई के विस्फोट से। उसे आई.सी.सी.यू. में पहुँचा दिया गया। "उसे नहीं मालूम कि वह कितने दिन बेहोश रहा। बेहोशी टूटी तो उसकी नींद में एक सपना आया..... शापग्रस्त ओपन टाइमर की विक्षित प्रेतात्मा सर पटकती थी फिर हंसती थी .... उसकी आँखें खुली। शरीर पसीने से नहाया हुआ था। सलमा ने संभालकर तौलिए से उसका बदन पोंछा। सिस्टर ने आकर दवा की खुराक दी।" अब वैद्य आया जो आंसुओं की जगह सपने जमा करने लगा था। प्रमथ्यु आया। कंधे पर बैठा गिद्ध उसका मांस नोच–नोंचकर खा रहा था। हिरोशिमा–नागासाकी आए। अदीब से मिलकर जापान लौट रहे थे। जल्दी–जल्दी बदलते सपने। महमूद एक सिस्टर के साथ आकर बोला– "एक मोहतरमा आपसे दो मिनट के लिए खासतौर से मिलना चाहती हैं।" मोहतरमा की महक से अदीब भौचक्का होता है। उसके मुंह से निकल पड़ा – 'जी... आप' 'महक' और 'जी'... आप! मोहतरमा ने कहा ... "जी मैं पाकिस्तान से आई हूँ, मेरा बेटा यहाँ पाकिस्तान हाईकमीशन में सेक्रेटरी एण्ड इन्फार्मेशन है।" अदीब ने इतना ही कहा कहीं आप ..... उसका गला सूखने लगता है। मोहतरमा ने यह भी बताया कि वह कानपुर भी गयी थी, बहुत बदल गया है। अदीब ने मन ही मन कहा मेरे लिए एक रूमाल अब भी वहाँ गिरता है। वह चिल्लाना चाहता है – विद्या! विद्या!! लेकिन चुप रहता है। इस प्रेम कहानी से उपन्यास कसा हुआ है, यह त्रासदी है, प्रेम की, विभाजन की, इतिहास में दफल हुए इंसानों की।

अंधा कबीर बोधिवृक्ष का पौधा लेकर पूरी दुनिया में निकल पड़ता है रोपने के लिए। गिलगमेश मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए औषधि की तलाश अब कर रहा है। लेकिन उपन्यास पाठकों के समक्ष कुछ जरूरी सवाल छोड़ जाता है। क्या बोधिवृक्ष उग पाएगा, क्या उसे काटने वाले पैदा होंगे? या कि गिलगमेश वापस आयेगा। और दुनिया पर छाया मृत्यु का आसन्न संकट कम होगा।

## संदर्भ


- हरियश, भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास, पृ0 39
- गोपीचंद नारंग, बीसवीं शताब्दी में उर्दू साहित्य, पृ0 129
- वीरेन्द्र कुमार बरनवाल, जिन्ना एक पुनर्दृष्टि, पृ0 354
- डॉ. प्रमिला अग्रवाल, भारत–विभाजन और कथा–साहित्य, पृ0 201
- राही मासूमरजा, आधा गाँव, पृ0 190
- यशपाल, झूठा–सच (भाग–2) देश का भविष्य, पृ0 339
- भीष्म साहनी, तमस, पृ0 233
- फणीश्वर नाथ रेणु, जुलूस, पृ0 131
- कमलेश्वर, लौटे हुए मुसाफिर पृ0 23
- बलवंत सिंह कालेकोस, पृ0 21
- कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ0 9

*Copyright © 2017, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*